REVIEW OF RESEARCH
ISSN: 2249-894X
IMPACT FACTOR : 5.7631(UIF)
VOLUME - 13 | ISSUE - 5 | FEBRUARY - 2024

"नीति–निदेशक सिद्धान्तों के क्रियान्वयन में न्यायपालिका की भूमिका का अध्ययन"

डॉ. गायत्री मिश्रा
प्राध्यापक राजनीति विज्ञान,
शासकीय ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)
राजकुमार हरिजन
शोधार्थी राजनीति विज्ञान,
शासकीय ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)

सारांश –

भारतीय राजनीति में न्यायपालिका की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण है क्योंकि संविधान निर्माताओं ने भारतीय शासन व्यवस्था में इसको सर्वोच्च स्थान प्रदान किया है जिसके द्वारा न केवल संविधान की व्याख्या और मौलिक अधिकारों की सुरक्षा की जाती है, बल्कि राज्य में सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय की स्थापना में अहम् भूमिका निभायी जा रही है। न्यायपालिका द्वारा मौलिक अधिकारों की सुरक्षा के साथ–साथ भाग 4 में वर्णित नीति–निदेशक सिद्धान्तों के कार्यान्वयन के प्रयास भी किए जा रहे हैं। आरम्भ में न्यायपालिका का कार्यक्षेत्र केवल व्यक्तिगत न्याय की स्थापना के लिए करना था लेकिन वर्तमान समय में न्यायपालिका का कार्य व्यक्तिगत न्याय के साथ–साथ सामाजिक न्याय की स्थापना में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है, विगत कुछ वर्षों में न्यायपालिका ने अपने न्यायिक निर्णयों में उच्चतम न्यायालय द्वारा अनेक नीति–निदेशक सिद्धान्तों को मौलिक अधिकारों का दर्जा प्रदान किया गया है और वे न्यायपालिका द्वारा लागू किए जाते हैं। यद्यपि न्यायपालिका को प्रत्यक्षतः नीति–निदेशक सिद्धान्तों को क्रियान्वित करने का दायित्व नहीं है क्योंकि संविधान द्वारा नीतियों और कानूनों को बनाने और लागू करने का अधिकार क्रमशः विधायिका और कार्यपालिका को दिया गया है और विधायिका और कार्यपालिका पर इन सिद्धान्तों को क्रियान्वित करने के लिए दबाव नहीं डाला जा सकता।

मुख्य शब्द – सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय।

प्रस्तावना –

राज्य में न्यायपालिका की आवश्यकता बताते हुए प्रो. गार्नर ने कहा है कि ''न्याय विभाग के अभाव में एक सभ्य राज्य की कल्पना नहीं की जा सकती है। कोई भी राज्य बिना विधान मण्डल के रहता है, यह बात तो समझ में आ सकती है, लेकिन ऐसे किसी राज्य की कल्पना नहीं की जा सकती है जिसमें न्यायपालिका या न्यायाधिकरण की कोई व्यवस्था न हो, क्योंकि न्यायपालिका के द्वारा संविधान की रक्षा और संविधान की आधिकारिक व्याख्या के रूप में कार्य किया जाता है और न्यायपालिका द्वारा संविधान की रक्षा के साथ–साथ नागरिकों की स्वतन्त्रता और अधिकारों की भी रक्षा की जाती है।[1]

हमारे संविधान के अन्तर्गत सर्वोच्च न्यायालय को महत्वपूर्ण भूमिका प्रदान की गयी है। इसका गठन संविधान के संरक्षक के रूप में किया गया है। यह नागरिकों के मौलिक अधिकारों का रक्षक और संवैधानिक व्यवस्था का संतुलनकर्ता है। यह अपने महत्त्वपूर्ण दायित्वों को पूरा कर सके, इसके लिए आवश्यक है न्यायपालिका शासन के नियंत्रण से पूर्णतया पृथक् हो।[2]

न्यायापालिका प्रत्यक्ष रूप से नीति–निदेशक सिद्धान्तों को लागू नहीं करती क्योंकि नीति–निदेशक सिद्धान्त न्याय योग्य नहीं हैं। ये तो राज्यों के लिए पथ–प्रदर्शक हैं जिनके ऊपर एक कल्याणकारी राज्य की आधारशिला रखी गयी है। संविधान में इन्हें इस आशय के साथ शामिल किया गया था कि राज्य इन्हें यथासंभव लागू करने का प्रयास करेंगे। अर्थात् नीति–निदेशक सिद्धान्तों को लागू करने का प्रयास करेंगे। नीति–निदेशक सिद्धान्तों को लागू या क्रियान्वित करने का दायित्व संविधान निर्माताओं द्वारा विधायिका और कार्यपालिका को सौंपा गया है, किन्तु संविधान लागू होने के इन 77 वर्षों में जनहित के तमाम ऐसे मामले आये हैं जिनको आधार बनाकर न्यायपालिका ने नीति–निदेशकों को प्रभावी बनाने का या क्रियान्वित करने का कार्य किया है। भारतीय राजनीति में इसे 'न्यायिक क्रियाशीलता' भी कहा जाता है। इस न्यायिक क्रियाशीलता के कारण विधायिका तथा न्यायपालिका के कई बार टकराव की स्थिति आयी है, किन्तु इस तथ्य से भी इनकार नहीं किया जा सकता कि न्यायिक क्रियाशीलता के आधार पर ही न्यायपालिका ने सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय की स्थापना करने का प्रयास किया है। न्यायपालिका ने जनहितवाद के माध्यम से संविधान की विस्तृत व्याख्या करके नागरिक अधिकारों के क्षेत्र को निरन्तर विस्तृत किया है। सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि राज्य के नीति–निदेशक सिद्धान्त, जो न्याय योग्य नहीं हैं, उन्हें जनहित वादों के माध्यम से न्यायपालिका ने क्रियान्वित करने का प्रयास किया है।

विश्लेषण –

न्यायपालिका नीति–निदेशक सिद्धान्तों को कार्यान्वित करने में नकारात्मक और सकारात्मक दोनो प्रकार की भूमिकाएँ निर्वाह करती हैं। नकारात्मक भूमिका में न्यायपालिका, विधायिका और कार्यपालिका को ऐसे कार्यों को और ऐसी नीतियों को बनाने से रोकती है जिनसे मौलिक अधिकारों का उल्लंघन होता है अर्थात् मौलिक अधिकारों की रक्षा के लिए न्यायपालिका न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति को आधार बनाकर विधायिका की ऐसी अनुउदारवादी नीतियों को रोकने का प्रयास करती है जो संविधान के भाग–3 तथा भाग–4 के विरुद्ध हैं। विगत कुछ वर्षों में न्यायपालिका द्वारा नीति–निदेशक सिद्धान्तों के क्षेत्र में विस्तार किया गया है और कतिपय सवंवैधानिक संशोधनों द्वारा भाग 4 में कुछ नये सिद्धान्त जोड़े गये हैं और न्यायपालिका ने कुछ नीति–निदेशक सिद्धान्तों को मौलिक अधिकार का अंग मानकर एक तरह से उन्हें बाध्यकारी बना दिया है।[3]

न्यायपालिका के अनुच्छेद 39 (ङ) को क्रियान्वित करने के लिए 'एम.सी. मेहता बनाम तमिलनाडु राज्य' (1996) के मामले में यह निर्णय दिया कि राज्य तत्काल बालश्रम को समाप्त करे तथा प्रभावित बालकों के पुनर्वास एवं कल्याण की व्यवस्था करे। न्यायालय ने यह निर्देश दिया कि 14 वर्ष की आयु तक के बालकों को किसी भी कारखाने या खान और अन्य संकटपूर्ण कार्यों में नियुक्त नहीं किया जायेगा और उन्हें अनुच्छेद 45 के आदेशों के अनुसार शिक्षा पाने का पूर्ण अवसर प्रदान किया जायेगा। न्यायपालिका ने यह भी निर्देश दिया कि बच्चों के स्थान पर उनके परिवार के किसी वयस्क सदस्य को काम दिया जाय तथा नियोजन प्रत्येक बालक को 20,000 रुपये की राशि प्रदान करेगा जिसे बालक के श्रम पुनर्वास एवं कल्याण के खाते में जमा करेगा। खतरे रहित कार्यों में यदि बालकों को काम में लगाया भी जायेगा तो उनकी कार्य अवधि 4 या 6 घण्टे से अधिक नहीं होगी, तथा उसे 2 घण्टे पढ़ने के लिए दिये जायेंगे जिसका व्यय नियोक्ता वहन करेगा।

न्यायपालिका द्वारा अनुच्छेद 39 (ङ) को क्रियान्वित करने हेतु निम्नांकित आदेश दिये गये हैं :–

1. छः माह के भीतर बाल श्रम के सम्बन्ध में एक सर्वेक्षण कराया जाय।
2. केन्द्रीय सरकार की घोषित बालक श्रम नीति के अनुसार न्यायालय ने निम्नलिखित कारखानों को निर्दिष्ट किया जहाँ इन्हें पहले लागू किया जाना चाहिए – मैच इण्डस्ट्री शिवकाशी तमिलनाडु; डायमण्ड पालिसिंग इण्डस्ट्री सूरत, प्रेस स्टोन पालिसिंग इण्डस्ट्री जयपुर राजस्थान; ग्लास कारखाना फिरोजाबाद, उत्तर प्रदेश; ब्रास बेयर इण्डस्ट्री मुरादाबाद, उत्तर प्रदेश; गलीचा कारखाना, मिर्जापुर और भदोही, उत्तर प्रदेश; ताला

बनाने का कारखाना अलीगढ़, उत्तर प्रदेश; स्लेट बनाने का कारखाना मरकापुर, आन्ध्र प्रदेश, स्लेट कारखाना मन्दसौर, मध्य प्रदेश।

3. एक बालक श्रम पुनर्वास कल्याण कोष की स्थापना की जाय, जिसमें नियोजक हर बालक के लिए 20,000 रुपये प्रतिकर के रूप में जमा करे जो बालक के पुनर्वास में प्रयुक्त किया जाय।
4. नियोजक का दायित्व बालकों को कार्यमुक्त करने के पश्चात् समाप्त नहीं होगा। सरकार द्वारा उस बालक के परिवार के एक वयस्क को उस कारखाने या अन्यत्र उसके बदले में नौकरी दिया जाय।
5. उन मामलों में जहाँ ऐसा वैकल्पिक कार्य देना सम्भव नहीं है, वहाँ समुचित सरकार अपने अंशदान के रूप में बाल कल्याण कोष में हर बालक के खाते में जहाँ वह कार्यरत है, 5000 रुपये जमा करे।
6. वयस्क काम पाने पर बालक को काम से हटा लेगा। यदि वयस्क को काम नहीं मिलता तो भी संरक्षक का यह कर्त्तव्य है कि वह शिक्षा के लिए भेजे और 25,000 रुपये की रकम पर मिलने वाले ब्याज से बालक की शिक्षा का खर्च 14 वर्ष की आयु तक चलाये।
7. उक्त रकम जिले में रखी जायेगी और जिलाधीश इसके लिये नियुक्त इंस्पेक्टरों के कार्य पर निगरानी रखेगा। इसके लिए समुचित सरकार श्रम मंत्रालय में एक पृथक् सेल की स्थापना करेगी।
8. जहाँ तक खतरे रहित कारखाने का प्रश्न है, न्यायालय ने निर्देश दिया कि सम्बन्धित सरकारें यह देखें कि बालकों के कार्य की अवधि 4 से 6 घण्टे से अधिक न हो और वे प्रत्येक दिन 2 घण्टे शिक्षा प्राप्त करे।

इस प्रकार न्यायपालिका ने उक्त निर्णय के आधार पर सामाजिक न्याय की स्थापना का प्रयास किया तथा अनुच्छेद 39 (ङ) के क्रियान्वयन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी जिसमें कहा गया है कि ''पुरुष और स्त्री कर्मकारों के स्वास्थ्य और शान्ति तथा बालकों की सुकुमार अवस्था का दुरुपयोग न हो और आर्थिक आवश्यकता से विवश होकर नागरिकों को ऐसे रोजगारों में न जाना पड़े जो उनकी आयु व शक्ति के अनुकूल न हों।''[4]

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 24 के अन्तर्गत 14 वर्ष से कम आयु के प्रत्येक बालक को किसी कारखाने या खान में कार्य करने को प्रतिबन्धित किया गया है जो कि एक मौलिक अधिकार है। इस अधिकार को सुरक्षित कराने में न्यायपालिका की अहम् भूमिका रही है।

पिछले तीन दशकों में भारत की न्याय व्यवस्था के स्वरूप में क्रान्तिकारी परिवर्तन आया है क्योंकि न्यायपालिका का लक्ष्य निरन्तर विस्तृत हुआ है। वर्तमान में न्यायपालिका का लक्ष्य व्यक्तिगत न्याय के साथ–साथ सामाजिक न्याय की स्थापना करना है। न्यायपालिका केवल न्याय प्रदान करने का ही कार्य नहीं कर रही है वरन् वह एक प्रशासक, समाज सुधारक, अनुसंधानकर्ता और नीति–निर्धारक की भूमिका का निर्वहन कर रही है। दूसरे शब्दों में न्यायपालिका न्याय सम्बन्धी कार्यों के सम्पादन के अतिरिक्त ऐसे और भी कई कार्य करती है जो मूलरूप से कार्यकारिणी (कार्यपालिका) तथा विधायिका द्वारा संपादित किए जाने चाहिए।

भाग 4 के नीति–निदेशक सिद्धान्तों को भारतीय संविधान में इस आशा के साथ शामिल किया गया था कि जब राज्य इस योग्य हो जायेंगे कि वे इन सिद्धान्तों को व्यवहारिक रूप प्रदान कर सकें, तो राज्य इन्हें यथासम्भव लागू करेंगे। लेकिन इन्हें व्यवहारिक रूप प्रदान करने या लागू करने के लिए राज्य या सम्बन्धित संस्था पर दबाव नहीं डाला जा सकता। क्योंकि संविधान निर्माताओं ने इन सिद्धान्तों को न्याय योग्य नहीं बनाया है। वैसे तो नीति–निदेशक सिद्धान्तों को क्रियान्वित करने का दायित्व सरकार के दो अंगों (विधायिका और कार्यपालिका) की है, लेकिन हाल के वर्षों में नीति–निदेशक सिद्धान्तों को क्रियान्वित करने की दिशा में न्यायपालिका ने भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी है। नीति–निदेशक सिद्धान्तों से सम्बन्धित संविधान के अनुच्छेद 39 (अ) में सामाजिक न्याय की स्थापना करने का वचन दिया है। न्यायपालिका जनहित विवादों को मान्यता देकर संविधान की उद्देशिका में निहित सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय की स्थापना का प्रयास कर रही है।

भाग–4 में वर्णित शिक्षा, स्वास्थ्य, आर्थिक सशक्तीकरण और निर्बल एवं असहाय वर्गों की सहायता के लिए कई महत्त्वपूर्ण न्यायिक निर्णय दिये हैं, जिसमें अनिवार्य शिक्षा, समान सिविल संहिता, निशुल्क विधिक सहायता, समान कार्य के लिए समान वेतन, कमजोर वर्गों की सहायता, पर्यावरण–संरक्षण इत्यादि से सम्बन्धित निदेशक सिद्धान्तों के क्रियान्वयन के लिए महत्त्वपूर्ण आदेश दिये हैं। सामाजिक हितों की रक्षक की भूमिका निभाते हुए न्यायपालिका ने हर उस क्षेत्र और समूह तक पहुँचने का प्रयास किया है, जहाँ शोषण, अन्याय की गतिविधियाँ संज्ञान में आयी है। जनहित याचिकाओं के माध्यम से तथा स्वयं संज्ञान में लेकर न्यायपालिका ने

महिलाओं, बच्चों, मजदूरों, गरीबों, शोषितों तथा समाज के अन्य कमजोर वर्ग के लोगों के कल्याण के लिए आवश्यक निर्देश और आदेश दिये हैं। यद्यपि नीति–निदेशक सिद्धान्तों को कार्यान्वित करने का दायित्व न्यायपालिका का नहीं है, फिर भी न्यायपालिका जनहित वादों को आधार बनाकर नीति–निदेशक सिद्धान्तों के क्रियान्वयन का प्रयास कर रही है।

हाल के वर्षों में न्यायपालिका ने कुछ नीति–निदेशक सिद्धान्तों को मूल अधिकारों का अंग मानकर एक तरह से बाध्यकारी बना दिया है। उदाहरण के लिए 'उन्नीकृष्णन बनाम आन्ध्र प्रदेश राज्य' के मामले में उच्चतम न्यायालय ने इस दृष्टिकोण की पुष्टि की कि मौलिक अधिकार तथा नीति–निदेशक सिद्धान्त एक दूसरे के पूरक तथा अनुपूरक हैं। उक्त मामले में उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया था कि 14 वर्ष तक के बालकों को निःशुल्क शिक्षा देना राज्य का सांविधानिक दायित्व है। क्योंकि अनुच्छेद 21 के अधीन शिक्षा पाने का अधिकार एक मौलिक अधिकार है, किन्तु उच्च शिक्षा पाने के मामले में यह अधिकार राज्य की आर्थिक क्षमता पर निर्भर करता है। न्यायपालिका ने निदेशक सिद्धान्तों के अन्तर्गत अनुच्छेद 46 में राज्य को निःशुल्क तथा अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था करने का निर्देश दिया था तथा इसी निर्देश के अनुपालन में वर्ष 2002 में 86वें संविधान संशोधन के आधार पर प्राथमिक शिक्षा को मौलिक अधिकार बना दिया गया, जिसमें कहा गया कि राज्य 6 वर्ष से लेकर 14 वर्ष तक के सभी बच्चों को अनिवार्य एवं निःशुल्क शिक्षा प्रदान करेगा।[5]

शिक्षा का मूल अधिकार दिसम्बर 2002 में स्वीकार किया गया था, परन्तु जुलाई 2009 तक यह अधिकार मात्र एक घोषणा थी। अगस्त 2009 में गजट[6] में नोटिफिकेशन जारी करते हुए इसे कानूनी रूप प्रदान किया गया तथा 1 अप्रैल 2010 को राज्य में इसे पूर्णतया लागू कर दिया गया। इस अधिकार को कानूनी रूप प्रदान करने का आशय यह है कि 6 से 14 वर्ष की आयु तक के सभी बच्चों को वास्तव में अनिवार्य तथा निःशुल्क शिक्षा प्राप्त हो। इस हेतु समस्त आवश्यक व्यवस्थाएँ करना राज्य का दायित्व होगा।[7]

निष्कर्षः

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि पिछले कुछ दशकों से न्यायपालिका ने एक सजग प्रशासक और समाज सुधारक की भूमिका को निवाहित करते हुए शिक्षा, लोक स्वास्थ्य, महिलाओं, बच्चों, अल्पसंख्यकों, समाज के अन्य कमजोर वर्गों की सहायता तथा पर्यावरण संरक्षण के लिए महत्त्वपूर्ण निर्देश और निर्णय देकर व्यक्तिगत अधिकारों के संरक्षण के साथ–साथ सामाजिक न्याय की स्थापना का प्रयास किया है।

संदर्भ –

1 फड़िया, बी.एल. – भारत का संविधानिक और राजनीतिक विकास, पृष्ठ 115
2 हेगड़े, के.एस. – क्राइसेस इन इंडियन जुडीशियरी, पृष्ठ 23
3 सईद, एस.एम. – भारतीय राजनीतिक व्यवस्था, पृष्ठ 88
4 पाण्डेय, जे.एन. – भारत का संविधान, पृष्ठ 368
5 मैथ्यू, पी.डी. – कल्चरल एण्ड एजूकेशनल राइट आफ दी माइनरटीज, पृष्ठ 46
6. भारत का राजपत्र (2009) – द राइट ऑफ चिल्ड्रेन टू फ्री एण्ड कम्पल्सरी एजुकेशन एक्ट, 2009, लेजिस्लेटिव डिपार्टमेंट, मिनिस्टरी ऑफ लॉ एण्ड जस्टिस, भारत सरकार, नई दिल्ली
7. हिन्दुस्तान समाचार पत्र, दिल्ली संस्करण, 02 अप्रैल, 2010, पृष्ठ 15